१ २२

प्र0 1– आपको संस्कृत की अभिरुचि विरासत में मिली। पिताश्री चारुदेव शास्त्री की विद्वत्ता से आपको प्रेरणा मिली। आज पीछे मुड़कर सोचते समय आप घर के संस्कृत वातावरण पर मन में उभरती स्मृतियां – कृपया बॉट लें।

उ0 – प्रारम्भ से ही पिताजी का प्रयास रहा कि मैं संस्कृत पढ़ूं, संस्कृत का विद्वान् बनूं। चौथी कक्षा उत्तीर्ण करने पर उन्होंने मुझे स्कूल से हटा लिया और घर पर ही मुझे पढ़ाना प्रारम्भ कर दिया। हर समय, उठते – बैठते, चलते फिरते वे मुझे संस्कृत शब्दों की रूप सिद्धि समझाते रहते थे। हमारा घर लाहौर (सम्प्रति पाकिस्तान में) कृष्णनगर नाम की एक बस्ती में था। पिताजी प्रातर्भ्रमण के शौकीन थे। वे प्रतिदिन प्रातः लारैंस गार्डन तक, जो कि चार – पांच मील की दूरी पर था, भ्रमण के लिए जाया करते थे। साथ में मुझे भी ले लेते थे। सारे रास्ते, आते – जाते वे शब्द सिद्धि समझाते जाते थे, पाणिनि सूत्रों का अर्थ बताते जाते थे। मेरे किशोर मन पर इससे बहुत आयास पड़ता था। एक दिन मैंने झुंझला कर कह ही दिया कि आप मेरी सैर खराब कर देते हैं। तब उन्हें शायद अपनी गलती का अहसास हुआ था। कुछ समय बच्चे के पास अपने लिये भी छोड़ना चाहिए, यह उन्हें लगा था।

प्राचीन पद्धति के पण्डितों में एक बड़ी भारी कमी होती है। वे शीघ्रातिशीघ्र अपने बच्चे को अपने ही समान विद्वान् देखना चाहते हैं। मेरे पिताश्री इसी प्रवृत्ति के शिकार थे। मेरा स्कूली जीवन चौथी कक्षा के बाद समाप्त हो गया था। अपने सहपाठियों के साथ खेलना – खिलाना, उन्मुक्त जीवन बिताना मेरे लिए सम्भव हुआ नहीं। बाल – सुलभ चंचलता से मैं दूर ही रहा। कब बचपन आया कब गया, मुझे इसकी सुध नहीं। जब सुध आई तो मैं बड़ा हो चुका था। व्याकरण के गूढ़तम रहस्यों को जान चुका था। पिताजी का साथ या अकेलापन यही मेरी नियति थी।

प्रातःकाल पिताजी के साथ भ्रमण के लिए जाता था। सायंकाल अकेले ही गोलबाग की ओर चल देता था। एक दिन वहां टहल रहा था कि एक लम्बे – ऊंचे गहरे काले रंग के एक संस्कृत पण्डित मुझे मिल गये। नत्थूराम शास्त्री उनका नाम था। मुझे देखते ही बोले – कुत्र चङ्क्रम्यते। मैं समझ गया मेरी परीक्षा ले रहे हैं। उस समय लाहौर के विद्वत्समाज में प्रसिद्धि थी कि पण्डित चारुदेव शास्त्री अपने पुत्र को व्याकरण पढ़ा रहे हैं। श्री नत्थूराम शास्त्री ने सोचा होगा कि देखा जाय कि पण्डित चारुदेव शास्त्री ने क्या व्याकरण पढ़ाया है। यदि बालक उत्तर नहीं दे सकेगा तो लोगों में कहते फिरेंगे कि देख लिया अभिनव पाणिनि के नाम से विख्यात चारुदेव शास्त्री का संस्कृत व्याकरण का पाण्डित्य। इसीलिए चङ्क्रम्यते जैसे जटिल यङन्त रूप का उन्होंने प्रयोग किया पर मैं भी किसी से कम नहीं था। मैंने उसी जैसे एक अन्य शब्द का प्रयोग कर कहा – अत्रैव बम्भ्रम्यते। शास्त्री जी ने न सुनने का सा अभिनय करते हुए कहा – किम् ? मैंने एक और गोला दागा – अत्रैव दन्द्रम्यते (= यहीं घूम रहा हूं)। शास्त्री जी ' चटुलोल्फुल्लगत्या ' वहां से चलते बने। दूसरे दिन

पिताजी से मिले तो कहने लगे – बड़ा विकट बालक है। एक के बाद एक कठिन प्रयोग करता गया। पिताजी ने कहा कि वह समझ गया कि आप उसकी परीक्षा ले रहे हैं। मैंने उसे व्याकरण अच्छी तरह पढ़ा रखा था। इसलिये वह एक के बाद एक इस तरह के प्रयोग करता गया। सुकुमारमति बच्चों की परीक्षा नहीं लेनी चाहिये। यदि वह उत्तर न दे पाता तो उस पर क्या बीतती ?

पिताजी जब कालेज जाते थे तो वहां भी मुझे साथ ले जाते थे। स्टाफ़ रूम में मुझे बैठा देते थे। उनके सहकर्मी वहां बैठते थे। उन्हीं के बीच खोया सा मैं भी बैठा रहता था। पिताजी कक्षा पढ़ा कर आते थे और फिर मुझे पढ़ाने लगते थे। कई बार उनके सहकर्मी पूछते थे कि क्या आप बच्चे को आधुनिक विषय नहीं पढ़ायेंगे। पढ़ाऊंगा, पर पहिले संस्कृत का विद्वान् इसे बना लूं – वे कहते थे।

15 वर्ष की अवस्था तक मुझे संस्कृत के अतिरिक्त किन्हीं अन्य और विषयों का ज्ञान नहीं था। तब पिताजी के मन में आया कि मुझे उनका ज्ञान भी होना चाहिये। उन्होंने सोचा मेरी स्कूली पढ़ाई फिर से प्रारम्भ कराई जाय। उन दिनों स्कूल को अधिकार होता था कि टैस्ट लेकर बच्चे को किसी भी कक्षा में वह प्रवेश दे सकता था। 1945 के अक्टूबर का महीना था। पिताजी मुझे नवीं कक्षा में प्रविष्ट करना चाहते थे। स्कूल ने टैस्ट की औपचारिकता पूरी की। मेरे उत्तीर्ण होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। पिताजी के प्रभाव के कारण मुझे प्रवेश मिल गया। पिताजी डी0 ए0 वी0 कालेज में प्राध्यापक थे। स्कूल भी डी0 ए0 वी0 संस्था का ही था और लाहौर के – न केवल लाहौर के ही अपितु पूरे उत्तर – पश्चिमी भारत के – प्रमुखतम स्कूलों में था।

हर कक्षा में विद्यार्थियों की भारी संख्या होने के कारण कक्षा को ए, बी, सी इत्यादि विभिन्न वर्गों में बांट दिया जाता था। सर्वोत्तम छात्र ए' वर्ग में होते थे, उनसे कम स्तर के बी वर्ग में और उनसे भी कम वर्ग के सी वर्ग में और उनसे भी कम वर्ग के डी वर्ग में और इसी तरह उनसे भी नीचे के वर्गों में होते थे। प्रतिवर्ष मध्यावधि परीक्षा हुआ करती थी। जिनके अंक अच्छे आते थे वे निम्न वर्गों से आगे के वर्ग में लाये जाते थे और आगे के वर्गों से जिनके कम अंक आते थे उन्हें नीचे के वर्गों में भेज दिया जाता था। परीक्षा का महीना सामान्यतया अक्टूबर का ही होता था। उसी अक्टूबर के महीने में मैंने उक्त स्कूल में प्रवेश लिया था और वह भी सीधे ' ए ' वर्ग में।

उपरिनिर्दिष्ट पद्धति के कारण हर वर्ग में उस समय कुछ नये चेहरे दिखाई देते थे। अध्यापक तब पूछते थे तुम किस वर्ग से हो। मुझे देख कर मेरे इतिहास के ' ए ' वर्ग के अध्यापक श्री जगन्नाथ ग्रोवर ने यह समझ कि मैं किसी नीचे के वर्ग से उत्तम प्रदर्शन के कारण उस वर्ग में आया हूंगा; मुझसे अंग्रेज़ी में पूछा – **From which section are you?** (तुम किस वर्ग से आये हो ?)। मैंने कहा – **I am section no, I am from home** (मैं किसी भी वर्ग से नहीं हूं)। घर से आया हूं। मेरी टूटी – फूटी अंग्रेज़ी सुन सारी कक्षा ठठा कर हंस पड़ी। मैं बहुत कटा। तब तक मैं शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। भरी कक्षा में इस तरह का उपहास ! मेरा हृदय हाहाकार कर उठा। तब मैंने निश्चय किया कि मैं अंग्रेज़ी का अभ्यास करूंगा और उसमें इतनी योग्यता प्राप्त करूंगा कि बड़े – बड़े

अंग्रेज़ीदां भी दांतों तले उंगली दबाने लगें। मैंने अंग्रेज़ी सीखने में दिन रात एक कर दिया। इसी का ही यह परिणाम था कि मैट्रिक्युलेशन में मैंने अंग्रेज़ी माध्यम से परीक्षा दी और प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होकर छात्रवृत्ति प्राप्त की।

प्र0–2 – पिता व्याकरण के धुरंधर विद्वान् थे। आप ने कविता की विधा में कदम रखा। कविता के प्रति लगाव – आने का प्रसंग भी बता दें – व्यक्ति – कृति – संस्था चिंतन जो भी हो

उ0 – संस्कृत कविता की ओर मेरी प्रवृत्ति सम्भवतः पूर्वजन्म के संस्कार के कारण ही शायद हुई। घर से मुझे इसके लिये कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। पिताजी वैयाकरण थे। फिर उनकी अपनी मान्यताएं थीं। उनका विचार था कि काव्यों में शृंगार रस का प्राधान्य होने के कारण बच्चे को उनसे दूर ही रहना चाहिए। उन्होंने मुझे कोई काव्य नहीं पढ़ाया।

काव्य की ओर उन्मुखता का कदाचित् एक कारण और भी हो सकता है। 1967 में जब साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला तो दिल्ली के खालसा कालेज ने एक अभिनन्दन समारोह का आयोजन पुरस्कृत कृति श्रीगुरु गोविन्दसिंहचरितम् के एक सिख गुरु से सम्बद्ध होने के कारण किया था। उस अवसर पर बोलते हुए मेरे पिताजी ने एक रहस्योद्घाटन किया था। तब तक मुझे उसका पता नहीं था। वह रहस्य यह था कि जब मैं गर्भस्थ था तो उन्होंने सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण मेरी माताजी को सुनाई थी। रामायण संस्कृत का एक काव्य ही नहीं, आदि काव्य है। उसी से ही काव्य परम्परा का श्रीगणेश हुआ। हो सकता है उस काव्य का मुझ पर प्रभाव पड़ा हो। मेरी सर्वाधिक समादृत दो कृतियां हैं। और दोनों का ही राम कथा से सम्बन्ध है। एक है रामायण का भाषाशास्त्रीय अध्ययन (यह कृति अंग्रेज़ी में है जिसमें इसका शीर्षक है – **The Ramayana – A Linguistic Study)** और दूसरा है थाई रामकथा ' रामकियन् ' पर आधारित 25 सर्गों का संस्कृत महाकाव्य श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम्। रामायण अथवा राम कथा से सम्बद्ध इन कृतियों के प्रणयन की उन्मुखता में भी कदाचित् यही कारण रहा हो। बचपन में मुझे यह आदत थी कि जो कुछ भी मैं देखता था उसे संस्कृत श्लोकों में वर्णन करने लग जाता था। उस समय के पद्यों का मुझे अब स्मरण नहीं है। केवल एक प्रसंग याद पड़ रहा है। मैं तब आठ – नौ बरस का रहा हूंगा। गर्मियों की छुट्टियां बिताने पिताजी गांव चले जाते थे। एक दिन उन्होंने मुझे कुएं से पानी लाने को कहा। मैं जब पानी ला रहा था तो गली में कुछ लोगों के बीच झगड़ा हो गया। बालसुलभ कुतूहलवश मैं वहां ठिठक गया। घर वापिस आने में मुझे आवश्यकता से किंचित् अधिक समय लग गया। पिताजी ने मुझसे संस्कृत में पूछा – वे प्रायः संस्कृत में ही मुझसे बात करते थे – कुतस्ते विलम्बः। मैंने जो घटना घटी थी वह जैसी की तैसी संस्कृत पद्यों में वर्णित कर दी। उसका एक अंश आज भी मुझे याद है – प्रतोल्यां महाँल्लोक – सम्मर्द आसीदतस्तात जातो महान् मे विलम्बः। प्रत्येक पद्य के अन्त में यही वाक्य था – अतस्तात जातो महान् मे विलम्बः। अभी मैं साढ़े 11 साल का ही था कि मेरी संस्कृत कविता षड्तुवर्णनम् प्रकाशित हो गई थी। महाकवि महामहोपाध्याय भट्ट मथुरानाथ शास्त्री के सम्पादकत्व में उन दिनों जयपुर से संस्कृत रत्नाकरः नामक पत्रिका निकलती थी। उसी में यह छपी थी। कविता के शीर्षक के नीचे भट्ट मथुरानाथ शास्त्री जी ने सम्पादकीय टिप्पणी में मेरी उम्र का उल्लेख किया था – द्वादशवर्षेण मेधाविना सत्यव्रतेन रचिता कविता। इस कविता में 15 पद्य हैं। दो पद्य वाक्य रचना की दृष्टि से एक – दूसरे से सम्बद्ध हैं। उन दानों में एक ही छन्द का होना स्वाभाविक था। शेष 13 में प्रत्येक में अलग – अलग छन्द का प्रयोग है। इसका अर्थ है 15 पद्यों में 14 अलग – अलग छन्दों का प्रयोग। 11 – 11 1/2 वर्ष की उम्र में छन्दों का इतना ज्ञान मुझे किस तरह था, यह आज भी मेरे लिये विस्मय का विषय है। इसी तरह विस्मय का विषय

छन्दों का विषयानुकूल प्रयोग। वर्षा ऋतु में नाचते हुए मोरों का वर्णन मत्तमयूर छन्द में, वसन्त ऋतु का वर्णन वसन्ततिलका छन्द में,शरद ऋतु में पत्तों के झड़ने का वर्णन वियोगिनी छन्द में इत्यादि।

मेरी जो कविता – यात्रा षड्ऋतुवर्णनम् से प्रारम्भ हुई वह श्रीबोधिसावचरितम्, इन्दिरागान्धीचरितम्, श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् जैसे महाकाव्यों, बृहत्तरं भारतम्,शर्मण्यदेशः सुतरां विभाति, थाईदेशविलासम् जैसे खण्डकाव्यों, श्रीगुरुगोविन्दसिंहचरितम् जैसे प्रबन्ध काव्य के पड़ावों को पार करती हुई दो खण्डों के लगभग साढ़े तीन हज़ार पद्यों के पत्रकाव्यम् तक आ पहुंची है और अब उन्मुख हो चली है अनेक खण्डों के विश्व की विविध सांस्कृतिक धाराओं पर आधारित विश्वकाव्यम् की ओर। इस बीच उसने रुख किया है एक गद्यात्मक संस्कृत वाङ्मय की इदम्प्रथम डायरी 'दिने दिने याति मदीयजीवितम्' तथा उसी तरह की ही – ' भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति ' शीर्षक की आत्मकथा की ओर भी।

प्र0– 3 – काशी में आप संस्कृत के विद्यार्थी बने। जगह का प्रभाव भी पढ़ाई पर पड़ता है न ? जैसी कुछ स्मृतियां ! दूसरे विषयों के अध्ययन की तुलना में संस्कृत की रीति भिन्न है न ? खूबियां बताइये।

उ0 – काशी प्रवास मेरा बहुत उपयोगी रहा। एक दिन में ही तीन – तीन पाठ चलते थे। प्रातः पण्डित महादेव उपाध्याय जी से अलङ्कार शास्त्र का पाठ, अपराह्ण में पण्डित शुकदेव झा जी से महाभाष्य का पाठ और सन्ध्या में उदासीन मठ में स्वामी सुरेश्वराचार्य जी से ब्रह्मसूत्र शांकार भाष्य का पाठ।

प्राचीन पद्धति के संस्कृत अध्ययन में आकर ग्रन्थों के अध्ययन पर बल होता है। किंच, मूलग्रन्थ की एक – एक पंक्ति का आशय समझने का प्रयास होता है जिसके लिए पण्डित सम्प्रदाय में प्रचलित शब्द है पंक्ति – पाण्डित्य।

प्राचीन पद्धति के अध्ययन तथा अर्वाचीन पद्धति के अध्ययन के अन्तर को एक प्रसंग से स्पष्ट करता हूं। एक दिन गुरुवर पण्डित रघुनाथ शर्मा से निघण्टु के रचयिता के विषय में उनका मत जानना चाहा। इस विषय में तीन अलग – अलग मत हैं। किसी का कहना है कि प्रजापति ने इस की रचना की, किसी का कहना है कि पूर्वाचार्यों ने यह संकलन किया, किसी का कहना है कि निरुक्तकर्ता यास्क ने ही इसकी रचना की। मेरे प्रश्न पर गुरुवर की प्रतिकिया थी – क्यों व्यर्थ में इन झंझटों में पड़ते हो, किसने लिखा, कब लिखा। यह देखो क्या लिखा।

प्राचीन पद्धति के गुरुजनों को ग्रन्थ अधिकांश कण्ठ होता था। उसे देखने की उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती थी। एक बार परीक्षा के दिन से एक दिन पूर्व मैं गुरुवर पण्डित शुकदेव जी के पास गया। एको गोत्रे सूत्र पर भाष्य मुझे पूरी तरह समझ में नहीं आ रहा था। महाभाष्यकार ने एक पूरा का पूरा आह्निक ही उसकी व्याख्या में लगा दिया है। गुरुजी ने कहा सुनो। लगभग दो घण्टे वे बोलते गये। बोल चुकने के बाद वे कहने लगे – अब पोथी बांचो। उसमें बांचने के लिए कुछ था ही नहीं। जो उन्होंने कहा था वही उसमें था।

मेरे जीवन की कतिपय अविस्मरणीय स्मृतियों में एक इन्हीं गुरुवर से सम्बद्ध है। एक दिन पाठ चल रहा था। इतने में एक अत्यन्त वृद्ध सज्जन लाठी टेकते – टेकते उधर आ निकले। उन्हें देखते ही मेरे गुरुजी ने लपक कर साष्टांग प्रणाम किया। वे उन के गुरु थे। तब उन्होंने मेरी ओर प्रश्न सूचक

<u>प्र0 9</u> – आप की अमर कृति ' थाईदेशविलासम् ' है। थाइलैण्ड की संस्कृति पर केंद्रित काव्य – लिखना – सहज सरल काम था या श्रमसाध्य ? उधर की विरासत इतिहास और मिथक की खूबियां कैसे समझ पाये ?

<u>उ0</u> – थाई देश को जानने की दृष्टि से उसके भूगोल, इतिहास, पुराताव आदि पर अनेक कृतियों का अध्ययन मैंने किया। अनेक विद्वानों से चर्चा होने पर एतद्विषयक जानकारी भी मुझे मिली। थाई जनजीवन को मैंने निकट से देखा और परखा भी। अतः उस देश पर जब लिखने लगा तो उसके बारे में मेरे पास पर्याप्त जानकारी थी। उसके स्वरूप की मुझे पहिचान थी। मनुस्मृति के एक पद्य की छायानुकृति पर लिखा गया मेरा निम्नलिखित एक पद्य भी थाई दृष्टि की मेरी पहिचान को उजागर करने के लिए पर्याप्त है –

धर्मो राष्ट्रं च राजा च चतुर्थी संस्कृतिस्तथा।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः थाईदेशस्य लक्षणम्।।

यह वह देश है जिसमें धर्म सर्वोपरि है। महाराज, जिन्हें जनता देवता के समान पूजती है किसी भी महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ करने से पूर्व भगवान् बुद्ध की मूर्ति के आगे घुटने टेक कर प्रणाम करते हैं। बौद्ध भिक्षुओं को राजपरिवार का हर सदस्य हाथ जोड़ कर और झुक कर प्रणाम करता है और उनके लिये अपेक्षित वस्तुओं को उन्हें अर्पित कर अपने को कृतकृत्य समझता है। वह स्वयं भी कुछ समय तक बौद्धभिक्षु बन चुका होता है और भिक्षु का जीवन बिता चुका होता है। उस देश में यह आवश्यक नहीं कि आजीवन बौद्ध भिक्षु ही रहा जाय। कितने भी समय के लिये – मात्र एक सप्ताह के लिये भी – कोई व्यक्ति बौद्ध भिक्षु बन सकता है और फिर गृहस्थ आश्रम में वापिस आ सकता है। इस पद्धति से वर्तमान राजवंश का प्रत्येक राजा एवं राजपरिवार के अन्य सदस्य कुछ न कुछ अवधि के लिये भिक्षु बने हैं, कुटी में रहे हैं, बौद्ध ग्रन्थों के अध्ययन – मनन एवं आचार्यों के प्रवचन सुनने में उन्होंने समय बिताया है।

उस देश के सांस्कृतिक, धार्मिक महत्व के तथा पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों का वर्णन मेरे काव्य का विषय है।

इस काव्य की रचना का भी एक विचित्र इतिहास है। मेरे थाई देश में पहुंचने के दो महीने के भीतर ही मैं राष्ट्रीय पुस्तकागार में गया। वहां पाण्डुलिपि विभाग के अध्यक्ष प्रो0 छूसक दीपयगसौर्न से मेरी भेंट हुई। बातचीत के प्रसंग में मैंने उनसे पूछा कि क्या उनके संग्रहालय में उनके देश के बारे में संस्कृत में गद्य में या पद्य में, प्रकाशित रूप में या पाण्डुलिपिरूप में कोई पुस्तक है। उन्होंने कहा – नहीं। फिर किंचित् मुस्कुरा कर कहा – आचार्यवर, आप ही क्यों नहीं लिख देते **(Professor, why don't you write one)**। मैंने वहां से लौटने पर पांच पद्यों की रचना की जिनमें एक में महाराज की चर्चा थी। दूसरे दिन कक्षा थी जिसमें महाराजकुमारी ने आना था। कक्षा समाप्त होने पर मैंने महाराजकुमारी से कहा कि मैंने उनके देश पर पांच पद्य लिखे हैं, यदि वे थकी न हों तो मैं उन्हें सुनाना चाहूंगा। उन्होंने कहा – आप सुनायें। वे बहुत प्रसन्न हुईं। मैंने कहा मेरा थाई देश पर एक काव्य ही लिखने का विचार है। उन्होंने कहा आप लिखिये, मैं इस का थाई पद्यानुवाद करूंगी। यह मेरे लिये बहुत बड़ा प्रोत्साहन था। एक देश की राजकुमारी अनुवाद करने को कह रही थी। मैंने काव्य

दृष्टि से देखा, जैसे कि जानना चाह रहे हों कि मैं कौन हूं। इस पर मेरे गुरु जी ने कहा – आपका पौत्र है। उनके ये शब्द मुझे कहीं गहरे तक छू गये। { विद्या सम्बन्ध से मैं उनका पौत्र होता हूं। } सम्बन्ध दो तरह का होता है – विद्या सम्बन्ध और योनिसम्बन्ध। गुरु और शिष्य में इस तरह की अन्तरंगता प्राचीन पद्धति के अध्ययन की विशेषता है।

प्र0 4– ब्रह्मसूत्र – महाकाव्य – काव्य प्रकाश जैसी कृतियां आपने पढ़ीं । क्या वे केवल पुरातनता की पोथियां रहीं ? भविष्य के लिए क्या उससे आपको कुछ दृष्टि मिली ?

उ0 – आकर ग्रन्थों ने शास्त्र को समझने की अन्तर्दृष्टि दी। उनमें निहित ज्ञान ओ आत्मसात् कर मैं काव्य रचना के उत्तुंग आयामों को पा सका। प्राचीन आचार्यों ने 'लोक शास्त्र काव्याद्यवेक्षण' को काव्य की उत्पत्ति का हेतु माना है।

प्र0 5 – ग्यारह वर्ष की आयु में लिखी कविता है – ' षडऋतु वर्णनम् ' इस कविता का जन्म कैसे हुआ ? अध्यापक – सहपाठी – परिवार सदस्यों की प्रतिकिया कैसी थी।

उ0 – इसका उत्तर प्रश्न 2 के उत्तर में समाहित है।

प्र0 6 – ' कोऽहम् ' कविता अधिक चर्चित रही। वर्तमान को समेटने की शक्ति को क्या आप अनिवार्य समझते हैं ? कोऽहम का लक्ष्य क्या रहा ?

उ0 – श्रेष्ठ कवि वही है जो अपनी रचनाओं में प्राचीनता और अर्वाचीनता को समेटता है। आधुनिक युगबोध कविता की आवश्यकता हो सकता है, अनिवार्यता नहीं। यदि अनिवार्यता होती तो जयशंकरप्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त, विश्वनाथ सत्यनारायण की प्राचीनता को अपने में समटती हुई कामायनी, भारतभारती, साकेत, रामायण कल्पवृक्षमु आदि रचनाएं इन कवियों को कैसे शीर्षस्थान पर प्रतिष्ठित कर पातीं।

प्र0 7 – आप थाइलैण्ड में काफी सालों तक रहे। अध्यापन किया। कृतियां लिखीं ? भारत के प्रति उधर के लोगों की सोच पहले क्या थी ? आज क्या है ?

उ0 – अपने आराध्य भगवान् बुद्ध का देश होने के कारण भारत के प्रति थाई देश के लोगों का विशेष आदर है। इधर जो भारतीय वहां गये हैं उनका आचार – व्यवहार बहुत ठीक नहीं रहा जिस कारण वहां के लोगों को निराशा हुई है। भारत से वहां जाने वालों में या तो व्यापारी हैं या छोटे मोटे काम धन्धे करने वाले। पैसा कमाना ही भारत से जाने वालों का मुख्य उद्येश्य रहा है। वे कुछ पृथक् ही रहे। वहां के समाज में पूरी तरह घुल मिल नहीं पाये।

प्र0 8 – हम भारतीयों को थाइलैण्ड से आत्मसात् करने के लिए कुछ भाव और विचार होंगे। इस पर आप की राय क्या है ?

उ0 – थाई देश में रहते – रहते वहां की सांस्कृतिक एवं धार्मिक चेतना को मैंने आत्मसात् कर लिया था। भारतीय संस्कृति से अनुप्राणित होने के कारण यह मेरे लिये कठिन नहीं था। अतः उस चेतना को उजागर करना मुझे अपनी सांस्कृतिक चेतना को उजागर करने जैसा लगा। अतः काव्य स्वयं से ही प्रवाहित हो गया। श्रमसाध्यता का उसमें प्रश्न ही नहीं था।

लिखना प्रारम्भ कर दिया। समय पर वह पूर्ण हुआ। राजकुमारी ने उसका अनुवाद किया, पद्य में नही, गद्य में। उस अनुवाद के साथ वह बाद में प्रकाशित हुआ।

इसके शीर्षक का भी इतिहास है। इसकी रचना पूर्ण हो जाने पर इसका शीर्षक क्या होना चाहिये इस पर विचार चल रहा था। एक दिन डा0 प्राणी लपनिच जो बैंकाक के चुलालौङ्कौर्न विश्वविद्यालय के प्राच्य भाषा विभाग में मेरी सहयोगिनी थीं, बोलीं – आचार्यवर, मैंने पी– एच0 डी0 के लिये क्षेमेन्द्र के ' कलाविलासम् ' पर कार्य किया है। आपकी कृति का नाम ' थाईदेशविलासम् ' हो जाय (**I have worked for my ph.d, once the Kalavilasam of Ksemendra. Let your work be Thaidesavilasam**) और यही इस कृति के शीर्षक के रूप में अपना लिया गया।

<u>प्र0 10</u> – इसकी रचना प्रकिया – स्मरणीय होगी ? दार्शनिकता का संस्पर्श इस में आया होगा ? सर्वाधिक स्मरणीय प्रसंग या कुछ पंक्तियां जानने को मैं उत्सुक हूं।

<u>उ0</u> – इसका उत्तर ऊपर जो कहा गया है, उसमें आ गया है।

<u>प्र0 11</u> – रामकीर्तिमहाकाव्यम् में थाई देश की रामकथा का वर्णन है ? हमारे देश की रामकथा की तुलना में वैशिष्टय रखने वाले कुछ प्रकरण, प्रसंग क्या थाई रामकथा में मिलते हैं ? थाई भाषा का रामायणकार कौन है ? जनमानस में रामायण कितना अंकित हो गया है ? स्मरणीय दो तीन पंक्तियां आपकी इस कृति की बता दें ।

<u>उ0</u> – रामकथा को थाईदेश में ' रामकियन् ' कहा जाता है। कियन् संस्कृत कीर्ति का ही परिवर्तित रूप है यह अधिकांश विद्वानों का मत है। मेरा स्वयं का भी यह मत है इसीलिये मैंने अपने काव्य का नाम श्रीरामकीर्तिमहाकाव्यम् रखा है। इक्के दुक्के विद्वान् रामकियन् को रामाख्यान का परिवर्तित रूप मानते हैं।

थाई रामकथा भारत की रामकथा/रामकथाओं से पर्याप्त भिन्न है, यद्यपि मूल कथानक के मुख्य मुख्य बिन्दु दोनों में समान हैं। इसके अनेक आख्यान – उपाख्यान भारत की किसी भी रामकथा में नहीं मिलते। इसका प्रारम्भ और उपसंहार भी भारत की रामायण / रामायणों से भिन्न है।

इसका प्रारम्भ इस प्रकार है – हिरन्तयक्ष नाम का एक दानव देवताओं को बहुत परेशान करता था। देवता शंकर भगवान् की शरण में गये। भगवान् ने विष्णु को याद किया और हिरन्तयक्ष का विनाश करने को उन्हें कहा। जैसे ही उसका विनाश कर वे अपने स्थान पर पहुंचे उन्होंने एक नवजात शिशु को वहां पाया। उसे लेकर लौटते पावों वे शंकर भगवान् के पास पहुंचे। भगवान् ने ' अनोमतन् ' यह नाम उसका रखा और कहा कि यह पृथिवी का पहिला राजा होगा। आते समय रास्ते में भगवान् विष्णु को अछन्‌गवी, दाह, युग और अग्र नाम के चार ऋषि मिले थे। उन्हीं के नामों के प्रथम अक्षरों को लेकर अयोध्या नाम की एक नगरी बसाई गयी जहां उसने राज किया।

<u>उपसंहार</u> – भगवान् 'शंकर हर सौ साल पर कैलाश पर्वत पर एक देवसभा का आयोजन करते थे जिसमें देवता सृष्टि में जो कुछ हो रहा है उसका विवरण उन्हें प्रस्तुत करते थे। रावण के संहार के बाद सौ साल पूरे हो गये थे इसलिये देवसभा का आयोजन हुआ। उसमें देवताओं ने बताया कि सर्वत्र

रावणादि उपद्रवी राक्षसों को संहार हो चुका है। शेष अपने बिल में दुबक गये हैं। सर्वत्र शान्ति है। पर जिसके कारण यह शान्ति है, वह श्रीराम स्वयं में अशान्त हैं। भगवान् तब सीता को पाताल से बुलवाते हैं और श्रीराम को अयोध्या से। सीता से कहते हैं कि वे श्रीराम को स्वीकार कर लें। पहिले तो वे आनाकानी करती हैं, कहती हैं कि बिना वजह के उनका परित्याग करने वाले शक्की मिजाज़ के व्यक्ति के साथ वे न रह पायेंगी, फिर जब भगवान् कहते हैं कि उनकी इच्छा है कि वे उन्हें (श्रीराम को) अपना लें तो वे मान जाती हैं। दोनों श्रीराम और सीता तब खुशी –खुशी अयोध्या चले जाते हैं और सानन्द जीवन यापन करने लगते हैं।

थाई रामकथा भारत के रामायण / रामायणों के विपरीत सुखान्त है।

वर्तमान राजवंश के प्रवर्तक महाराज राम प्रथम (मूल नाम फ्र बुद्ध योद् फा) ने अविकल रूप से अपनी अमर कृति में इसका वर्णन किया था। इससे पूर्व उनके पूर्ववर्ती ताक्सिन् महान् ने इस के कतिपय अंशों की प्रस्तुति की थी। बाद के रामकियन् को प्रस्तुत करने वालों में थे वर्तमान् राजवंश के ही राम द्वितीय तथा राम षष्ठ। राम द्वितीय की कृति में कतिपय उपाख्यान ही हैं। नाट्य प्रस्तुति की दृष्टि से वह श्रेष्ठ मानी जाती है। महाराज राम षष्ठ की कृति शोधपरक है। रामकियन् के स्रोतों की तलाश की दृष्टि से वह महत्वपूर्ण है और शोध के नये आयाम प्रस्तुत करती है।

<u>प्र0 12</u> – गुरुगोविन्दचरितम् ' का रचना प्रसंग बतावें। साहित्य अकादमी का पुरस्कार इसके आधार पर मिला था। गुरुगोविन्द को काव्यनायक बनाने का मुख्य कारण बताइये।

<u>उ0</u> – एक प्रसंगवश मेरा पटियाला जाना हुआ था। वहां मेरी भेंट पंजाबी विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति नारंग से हुई थी। यह अक्टूबर 1967 की बात थी। 1968 के प्रारम्भ में गुरुगोविन्दसिंह जी जन्म त्रिशताब्दी मनाई जानी थी। उस अवसर पर भारत की विभिन्न भाषाओं में उनकी जीवनी लिखवाने और उसे प्रकाशित करवाने के लिये गुरुगोविन्दसिंह फाउण्डेशन की स्थापना की गई थी। संस्कृत में श्रीगुरुगोविन्दसिंह की जीवनी लिखी जाय यह इच्छा श्री नारंग ने मुझ से प्रकट की। मैंने इसका स्वागत किया और दिन रात लग कर रिकार्ड टाइम में इस कार्य को पूर्ण किया। 17 जनवरी, 1968 को यह प्रकाश में भी आ चुकी थी। उसी वर्ष ही इसे साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

श्रीगुरुगोविन्दसिंह में नायक के सभी गुण थे। वे धीरोदात्त कोटि के थे। जब भारत विदेशी आक्रान्ताओं के अत्याचारों से त्रस्त था तब उन्होंने सब प्रकार की विपरीत परिस्थितियों में भी उनका प्रतिरोध करने की ठानी। उन्होंने अपने शिष्यों (सिखों) को सिंह बना दिया।

<u>प्र0 13</u> – थाइलैण्ड की राजकुमारी आपकी संस्कृत शिष्या रहीं। उनका क्या नाम है ? उनकी उत्सुकता, अभिरुचि – पर आपकी राय क्या है ? वह बाद में आपकी अनुवादिका बनीं न ?

<u>उ0</u> – थाई महाराजकुमारी का नाम सिरिन्थौर्न (संस्कृत रूप श्रीधरा) है। संस्कृत में उन्होंने एम0 ए0 और पी– एच0 डी0 की है। अनेक भाषाएं, अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, चीनी इत्यादि वे जानती हैं। संगीत में भी उनकी अभिरुचि है, अनेक वाद्य बजा लेती हैं। चित्रांकन भी वे करती हैं। अनेक प्रकार के व्यंजन भी वे बना लेती हैं। समाज कल्याण की अनेक योजनाएं उनके निर्देशन में थाई देश में चल रही हैं। वे अत्यन्त लोकप्रिय हैं। लोग उन्हें स्नेह वश ' हमारी राजकुमारी ' कहते हैं। देश – विदेश में भ्रमण और वहां के दर्शनीय स्थानों को देख कर उनका सचित्र विवरण स्वदेश में लौटने पर संस्मरणों के रूप में

लिखना यह उनका व्यसन है। जहां जाती हैं तीन चीज़ें उनके पास रहती हैं – कलम, नोटबुक और कैमरा। वे बराबर नोट्स लेती रहती हैं। कलम उनकी चलती ही रहती है। उन्हीं के आधार पर वे संस्मरण ग्रन्थ लिखती हैं।

बहुत परिहासप्रिय हैं वे जिसने उन्हें लोकप्रियता की चरम सीमा तक पहुंचा दिया है।

महाचक्री उनकी उपाधि है। यह महाराज ने उन्हें अपने पचासवें जन्मदिन पर दी थी।

प्र0 14 – थाईलैण्ड की नयी पीढ़ी की संस्कृति, सोच पर आप क्या सोचते हैं। क्या वे पश्चिम की चकाचौंध वाली संस्कृति के पीछे पड़ी है ?

उ0 – थाईलैण्ड की नयी पीढ़ी भी भारत की नई पीढ़ी की तरह ही है। पश्चिम की चकाचौंध तो है ही पर अपना अतीत भी है, अपने मूल्य भी हैं जिनसे वह पूरी तरह कटी नहीं है। बौद्ध धर्म के व्यापक प्रभाव ने उसे पश्चिम के अन्धानुकरण से रोक रखा है। घर के भीतर उसकी स्यामी वेषभूषा है, स्यामी रहन सहन है, घर से बाहर पाश्चात्य। रीति – रिवाज, उत्सव, सब परम्परागत हैं।

प्र0 15 – आपका यह कथन बहुत महत्व रखता है – कुछ साहित्य ऐसा होता है जो कालातीत होता है – बीसवीं सदी के उत्तरार्ध और इक्कीसवीं सदी के पहले दशक के सन्दर्भ में इसका मूल्यांकन करना है। संस्कृत की कुछ कालातीत कृतियों का उल्लेख करें ।

उ0 – कालातीत साहित्य परिमाण में बहुत ही कम होता है। प्राचीन संस्कृत साहित्य को ही लीजिये। सहस्राब्दियों में सहस्रों कृतियों के प्रणयन होने पर भी कतिपय कृतियां ही इस कोटि में आ पाई। 19 वीं और 20 वीं शताब्दी में इस प्रकार की कृतियों में उल्लेख किया जा सकता है श्री अम्बिकादत्त व्यास की कृति शिवराजविजय का जो अनेक विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तक बनी है, मेरे पितृश्री के श्रीगान्धिचरितम्, श्रीश्रीनिवास शास्त्री के सूर्यप्रभा किंवा वैभवपिशाचः का, भट्ट मथुरानाथशास्त्री के जयपुरवैभवम् और साहित्यवैभवम् था। श्रीजीवन्यायतीर्थ के विधिविपर्यासम् का वाईमहालिंग शास्त्री के प्रहसन उभयरूपकम् का।

प्र0 16 – आज के संस्कृत लेखन की दशा और दिशा पर आप के मन में आशंका है या आशा ? प्रमुख समकालीन साहित्यकार कौन कौन हैं ? किस विधा में कालजयी कृतियां आज मिलती हैं ?

उ0 – संस्कृत के आज के लेखन की दशा और दिशा के विषय में आशान्वित हूं। अनेक साहित्यकार साहित्यसर्जना कर रहे हैं। इनमें विशेष उल्लेखनीय हैं – अभिराज राजेन्द्र मिश्र, हरिदत्त शर्मा, वनमाली बिस्वाल, जगन्नाथ पाठक, केशवचन्द्र दाश, हर्षदेवमाधव, रामकरण शर्मा, रामकिशोर मिश्र, देवदत्त भट्टि आदि।

इनमें केशवचन्द्र दाश, हर्षदेव माधव, देवदत्त भट्टि आदि ने संस्कृत लेखन में नये प्रयोग किये हैं।

प्र0 17 – अन्य भारतीय भाषाओं के साथ संस्कृत का संपर्क आज किस ढ़ंग से आगे बढ़ रहा है ? क्या इस में कुछ परिवर्तन चाहिये ?

उ0 – बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न है। भारतीय भाषाओं के साहित्यकारों में इधर एक चिन्तन इस प्रकार का उभरा है कि संस्कृत उनकी प्रगति को रोकती है। वे अपनी कृतियों में संस्कृत के स्थान पर देशी शब्दों के प्रयोग पर बल देने लगे हैं। यह चिन्तन सर्वथा अस्वस्थ है। संस्कृत भारतीय भाषाओं की ऊर्जा रही है। इन भाषओं के प्रारम्भिक साहित्यकार संस्कृत के भी अच्छे जानकार होते थे। उनकी कृतियों के कालजयी होने में इस ऊर्जा ने भरपूर योगदान दिया है।

प्र0 18 – भारत की सब से प्राचीन भाषा संस्कृत है। लेकिन भारत का सर्वोच्च साहित्यिक पुरस्कार 2008 में पहली बार मिला है। आपके माध्यम से यह श्रेय मिला है। यों निमित्त बनते समय आपकी क्या राय है।

उ0 – संस्कृत को प्रथम बार ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला और उसमें मैं निमित्त बना इसे मैं अहोभाग्य मानता हूं। इससे जनसाधारण की भी दृष्टि संस्कृत की ओर गई है। इससे निश्चित ही संस्कृत के प्रचार और प्रसार को बल मिलेगा। संस्कृत भाषा चिरप्राचीन है और चिरनवीन भी यह चिन्तन भी इससे सुदृढ़ होगा।

प्र0 19 – आडियो – वीडियो युग में सृजनात्मक साहित्य के भविष्य पर आ क्या सोचते हैं ?

उ0 – मुझे नहीं लगता कि आडियो वीडियो का कवि – सृजनात्मक साहित्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ेगा। ये तो प्रस्तुति का एक माध्यम है। पहले भी और आज भी कवि – सम्मेलनों में पाठ करते रहे हैं और आज भी कर रहे हैं। कहानियां पहले भी सुनाई जाती रही हैं और आज भी सुनाई जाती हैं। पर अन्तर इतना है कि किसी गोष्ठी में सुनाई गई कविता या कहानी उस गोष्ठी तक ही सीमित रहती है। लेकिन आडियो वीडियो यन्त्रों के द्वारा कोई भी व्यक्ति कहीं भी उन्हें सुन और देख सकता है और उनका रसास्वादन कर सकता है। इस तरह सम्प्रषणीयता की दृष्टि से सृजनात्मक साहित्य का प्रसार क्षेत्र कहीं अधिक विस्तृत हो जाता है। लाखों लोग एक साथ उसे देख और सुन सकते हैं। कैसेट के माध्यम से उन्हें सुरक्षित रखा जा सकता है। इसका एक और भी लाभ है और वह है अधिक स्थान की आवश्यकता का न होना। पुस्तकालयों के लिए बड़े – बड़े हॉल की आवश्यकता होती है जिनमें बड़े – बड़े गलियारों में पुस्तकें सजी रहती हैं। पर कैसेट के माध्यम से पुस्तकें कुछ अलमारी में ही सिमट जाती हैं। बड़े से बड़े, एक या अनेक ग्रन्थ एक कैसेट में ही आ जाते हैं। और फिर जहां समय बीतने के साथ पुस्तकों के कागज पीले पड़ने लगते हैं और जर्जर होने लगते हैं वहां आडियो वीडियो में ये स्थिति नहीं आती।

प्र0 20 – आपका जीवन दर्शन क्या है ? साहित्य के माध्यम से उसको अधिक अभिव्यक्ति कहां मिली है ?

उ0 – अभी तिरुपति से मेरे विषय में ' ए लिविंग लीजेण्ड (जीवित किंवदन्ती) शीर्षक से एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें नई दिल्ली के अदिति महाविद्यालय की पूर्व आचार्या डा0 कमल आनन्द ने तीस पृष्ठ का हिन्दी और अंग्रेज़ी में सुदीर्घ लेख किया है। सर्वधर्म समभाव एवम् सम्यक चारित्र तथा हर विषय को अनेक दृष्टियों से देखना और सभी के प्रति समान आदर भाव यही मेरे जीवन का संक्षेप में दर्शन रहा है जो मेरे साहित्य में यत्र – तत्र सर्वत्र प्रतिबिम्बित हुआ है।